दवाइयां जो बैक्टीरिया को खुदकुशी करने को उकसाएं

डॉ. डी. बालसुब्रमण्यन

हमारे शरीर को इकोतंत्र सही ही कहा जाता है - स्थूल रूप में नहीं बल्कि अंदरुनी तौर पर हमारा शरीर एक पूरा इकोतंत्र है। अनगिनत किस्म के सूक्ष्म जीव ज़माने से हमारे शरीर में रहते आए हैं और इन्होंने हमारे विभिन्न अंगों में बस्तियां बसाई हुई हैं। इनमें से कुछ तो ऐसे हैं कि उनके बिना हम अपने भोजन के कुछ अवयवों को पचा भी नहीं पाएंगे। जैसे आंतों में बसे बैसिलस बैक्टीरिया।

मददगार बाशिंदे

इन बैक्टीरिया को शरीर में से निकाल दें, तो हमें अपच हो जाएगा, हम कमज़ोर पड़ जाएंगे। इन बैक्टीरिया और हमारे बीच बहुत निजी स्तर पर एक सहजीवी सम्बंध है। उनको अपने शरीर में बसे परजीवी कहना अन्याय होगा।

सवाल यह है कि जब इतने बैक्टीरिया हमारे शरीर में बसे हैं, तो हम संक्रमण से इतने चिंतित क्यों रहते हैं। कारण यह है कि बाहरी घुसपैठ होने पर अंदर का सहज सहजीवी विश्व गड़बड़ा जाता है और रोग पैदा होते हैं।

संक्रमण को अंग्रेज़ी में इन्फेक्शन कहते हैं और यह शब्द लैटिन मूल का है जिसका अर्थ होता है दाग लगना, धब्बा लगना और उसके कारण कष्ट होता ही है। जैसा कि थॉमस लुइस ने अपनी पुस्तक 'दी लाइव्स ऑफ ए सेल' में लिखा है, अधिकांश बैक्टीरिया हमारे लिए तभी नुकसानदायक होते हैं जब वे विष बनाते हैं[1]। वे विष तभी बनाते हैं जब उन्हें नुकसान पहुंचता है या वे बीमार होते हैं।

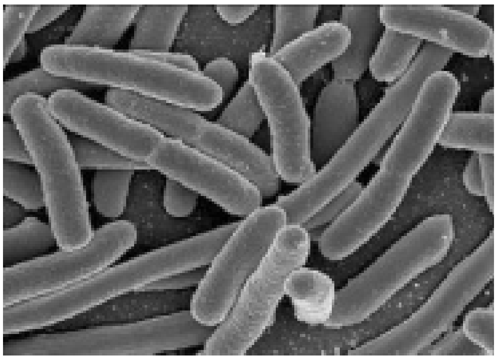

ऐसा तब हो सकता है जब वे गलती से किसी बेगाने परिवेश में पहुंच जाएं, जिसके वे आदी न हों या जहां उन्हें सहज महसूस न हो। नए परिवेश से समायोजन करने के लिए वे ऐसी जैव-रासायनिक क्रियाएं शुरू करते हैं, जो उनके लिए ठीक हैं मगर हमें ये रासायनिक क्रियाएं अस्वीकार्य लगती हैं।

अपनी तरफ से हम रक्षात्मक प्रतिक्रिया की पूरी शृंखला शुरू कर देते हैं ताकि अनचाहे मेहमान से छुटकारा पा सकें। यदि अपने आंतरिक औज़ारों से बात न बने तो हम इन बैक्टीरिया को मारने के लिए दवाइयां खाने लगते हैं।

ये दवाइयां एंटीबायोटिक्स हैं। जैसे एम्पिसिलीन, सिप्रॉफ्लॉक्सेसिन, एरिथ्रोमायसिन वगैरह। यह सही है कि अधिकांश बैक्टीरिया तो इस हमले में मारे जाते हैं मगर कुछ विचित्र बैक्टीरिया बच जाते हैं और शरीर में बने रहते हैं। ये विचित्र इसलिए हैं क्योंकि इनकी जिनेटिक संरचना औरों से थोड़ी अलग होती है। इन अंतरों की बदौलत ये दवा के असर को झेल जाते हैं।

दवा प्रतिरोध

अब यह तो सर्वविदित है कि बैक्टीरिया का प्रजनन वर्षों की बजाय मिनटों में पूरा होता है। तो जल्दी ही इन दवा प्रतिरोधी बैक्टीरिया की संख्या खूब बढ़ जाती है और ये शरीर के सामने एक चुनौती बन जाते हैं। अर्थात तेज़ी से विकसित, परिवर्तित होते बैक्टीरिया और औषधि खोजियों के बीच संघर्ष सतत चलता रहता है। समय और तादाद दोनों ही बैक्टीरिया के हक में काम करते हैं। इस दोहरे लाभ के चलते सूक्ष्म जीवों के ये विचित्र रूप और जिनेटिक उत्परिवर्तित रूप किसी भी जगह बस्ती बना लेते हैं - इन्सान, पशु, और यहां तक कि आर्क्टिक की बर्फ और उबलते गर्म झरनों तक में।

डार्विन ने बताया था कि सजीव अपने पर्यावरण से कैसे जूझते हैं और कैसे सबसे फिट जीवित रह पाते हैं। यहां डार्विन की बात साकार हो उठती है। औषधि वैज्ञानिक को इन कीटाणुओं की जैविक प्रकृति को समझकर ऐसे अणु विकसित करना होते हैं जो जीवन चक्र के किसी मुकाम पर इन्हें मार गिराए।

साथ ही उसे यह भी सुनिश्चित करना होता है कि यह दवा हमें या हमारे शरीर में पल रहे सहजीवी बैक्टीरिया को कोई नुकसान न पहुंचाए। यह कोई आसान काम नहीं है। ऐसे में कोई आश्चर्य की बात नहीं कि दवा कम्पनियां ऐसे दुश्मन के खिलाफ करोड़ों रुपए खर्च करती हैं जिनका जीवन चक्र इस बात की गुंजाइश देता है कि वे जिनेटिक उत्परिवर्तित रूप पैदा कर लें और दवाइयों को नाकाम कर दें। इसीलिए इन सुपर कीटाणुओं के खिलाफ सुपर दवाइयों की ज़रूरत बनी रहती है। वर्तमान में इस्तेमाल की जा रही बैक्टीरिया नाशी दवाइयां तीन किस्म की हैं।

एक है सिप्रॉफ्लॉक्सेसिन समूह। इस समूह की दवाइयां बैक्टीरिया के डी.एन.ए. (अनुवांशिक सामग्री) की प्रतिलिपि नहीं बनने देती। इसके चलते बैक्टीरिया की भावी पीढ़ियां पैदा नहीं हो पातीं।

क्लोरेम्फिनेकॉल समूह की दवाइयां बैक्टीरिया को प्रोटीन बनाने से रोकती हैं। प्रोटीन ही कोशिका की सारी क्रियाओं को अंजाम देते हैं। यदि प्रोटीन न बनें तो कोशिका काम नहीं कर सकती।

बैक्टीरिया नाशी दवाइयों का तीसरा समूह पेनिसिलीन दवाइयों का है। ये बैक्टीरिया की कोशिका की दीवार नहीं बनने देतीं। कोशिका भित्ती के बगैर बैक्टीरिया की मृत्यु निश्चित है।

फिर भी जिनेटिक रूप से उत्परिवर्तित बैक्टीरिया इन दवाइयों को पचा जाते हैं। इन बैक्टीरिया में जीन्स में ऐसे परिवर्तन हो चुके होते हैं कि दवाइयां असरहीन रहती हैं।

एक ख्याल यह आता है कि काश ऐसी दवाइयां उपलब्ध हों जो बैक्टीरिया को खुदकुशी को उकसाएं। यानी ये बैक्टीरिया पर ऐसा हमला करें जिसका सम्बंध प्रजनन, चयापचय या वृद्धि से न हो। ऐसा एक उपाय हो सकता है कि आप बैक्टीरिया को भस्म कर दें, जला डालें। मगर इसके लिए ज़रूरी होगा कि उन्हें सामान्य तापमान पर नियंत्रित रूप से जलाया जाए। इसे चयापचयनुमा ऑक्सीकरण कहते हैं। और यह काम स्वयं बैक्टीरिया को करना होगा - उसे आत्मदाह करना होगा। इस तरह से इन्सान के शरीर को भी कोई नुकसान नहीं होगा और न ही सहजीवी बैक्टीरिया को। और ऐसा उपाय वास्तव में खोज लिया गया है। इसमें किसी नए अणु का नहीं बल्कि फ्लॉक्सेसिन और एम्पिसिलीन जैसे जाने-माने दवा समूहों का ही उपयोग किया गया है। बोस्टन स्कूल ऑफ मेडिसिन के प्रोफेसर जेम्स कोलिन्स और उनके साथियों ने यह पता लगाया है कि ये दवाइयां बैक्टीरिया पर एक अतिरिक्त असर करती हैं जो अब तक ज्ञात नहीं था।

ग्लायकोलिटिक चक्र

सेल नामक शोध पत्रिका के 7 सितंबर 2007 के अंक में प्रकाशित अपने शोध पत्र में कोलिन्स व साथियों ने बताया है कि ये दवाइयां बैक्टीरिया की एक बुनियादी जैव रासायनिक क्रिया को प्रभावित करती हैं। इस क्रिया को ग्लायकोलिटिक चक्र कहते हैं। यह चक्र भोजन के पाचन का शुरुआती कदम होता है। इस चक्र को प्रभावित करते समय वे भारी मात्रा में धनात्मक लौह परमाणु उत्पन्न करती हैं। ये लौह परमाणु फिर हायड्रॉक्सिल मूलक पैदा करते हैं जो 'ज्वाला' का काम करते हैं।

जैसा कि प्रोफेसर कोलिन्स के एक छात्र माइकल कोहान्स्की बताते हैं, ये मूलक 'कोशिका झिल्लियों के डी.एन.ए., प्रोटीन, लिपिड्स वगैरह हर चीज़ को बदल देते हैं। ये अंधाधुंध संहारक हैं।' होता यही है कि बैक्टीरिया भस्म हो जाता है।

और अच्छी बात यह है कि बैक्टीरिया के आत्मदाह का यह अज्ञात मार्ग वर्तमान में जाने-माने बैक्टीरिया नाशी शुरू कर सकते हैं।

मारक क्षमता में वृद्धि

कोलिन्स का कहना है कि यदि हम इनके साथ एक

और पदार्थ जोड़ दें जो बैक्टीरिया की बचाव व मरम्मत क्षमता को कमज़ोर कर दे, तो यह असर और भी बढ़ जाता है। उदाहरण के लिए बैक्टीरिया एक प्रोटीन RecA का उपयोग करते हैं जो डी.एन.ए. की मरम्मत में मदद करता है। यदि हम कोई ऐसा पदार्थ मिला दें इस प्रोटीन को नष्ट कर दे तो असर कई गुना हो जाएगा।

इससे भी महत्व की बात यह है कि ये दवाइयां घुसपैठियों को ही चुन-चुनकर शिकार बनाती हैं, इसलिए हमारे शरीर या मददगार सहजीवी बैक्टीरिया को कोई खतरा भी नहीं होगा।

हमें उम्मीद करनी चाहिए कि अब इस तरह के असर बढ़ाने वाले अणुओं की खोज में तेज़ी आएगी। और कई कम्पनियों ने तो इस दिशा में काम शुरू भी कर दिया है। ***(स्रोत फीचर्स)***